प्रकृति की संस्कृति और संस्कृति की प्रकृति : छत्तीसगढ़िया मन

भुवाल सिंह ठाकुर

प्रकृति मनुष्य की मौलिकता की पहचान है। मौलिक होने की प्राथमिक सुगंध लोकसंस्कृति की भूमिका रचती है। लोक का मन प्रकृति की सदाशयता और संस्कृति की विविधवर्णी रूप में जीवंत होता है।

जनकवि लक्ष्मण मस्तुरिया के गीत छत्तीसगढ़ की प्रकृति और संस्कृति का मंगलाचरण है। मस्तुरिया धरती माँ की वंदना करते हुए लिखते हैं–

"मैं बंदत हौं दिन रात वो

मोर धरती मईया

जय होवय तोर

मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर

- - -

मैं बंदत हौं दिन रात वो

मोर धरती मईया

जय होवय तोर

मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर।"

लोक की जनवाणी का प्रतिनिधि रूप है यह लोकगीत। यहाँ छत्तीसगढ़िया मन धरती माँ की वंदना कर रहा है, जहाँ वह निवास करता है, जिस धरती से उसे दाना-पानी मिलता है। दिन-रात वंदना करने का भाव यहाँ अलौकिक बिल्कुल भी नहीं है। यह चरैवेति-चरैवेति के संदेश का लोक मुहावरा है, जहाँ विश्राम नहीं? किसान जीवन का। मूल राग है यह पंक्ति। यह किसान ही है, जिनके कारण धरती में अन्न की पैदावार संभव होती है। ऐसी वसुंधरा की जय कहना मनुष्य की कृतज्ञता का प्रमाण है। यह कृतज्ञता मनुष्यता का सारांश है।

"सूत उठ के बड़े बिहनिया

तोरे पईया लागव

सुरुज जोत मा करव आरती

गँगा पांव पखारव

फेर काया फूल चढ़ावव

वो मोर धरती मईया

हाय रे मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर।"

धरती का असल पुत्र किसान धरती माँ को प्रणाम करता है। यह प्रणाम बनावटरहित और कर्मकांड से अलहदा है। इसमें अतिरेक नहीं है। यह प्रदर्शन से कोसों दूर है। वह धरती की वंदना असल देव, जिनको वे देख सकते हैं, जिनके ताप को महसूस कर सकते हैं, जिनके उजाले से अपने तन को ऊर्जा और मन के अंधेरे को भेदकर आशा की उजास में स्नात हो सकते हैं, ऐसे सूर्य को वे जोत के रूप में धरती माँ की वंदना के लिए प्रस्तुत करते हैं। यह आरती श्लोक पाठ से अलग कर्मपाठ से जुड़ी है। इसकी शुभज्योति स्वयं सूरज है। फूल के रूप में धरती पुत्र किसान स्वयं को अर्पित करता है। वह किसी डाली या पौधे से उसके रंग-बिरंगे फूल को अलग नहीं करता इसके बदले अपनी काया (शरीर) को पुष्प की जगह समर्पित करता है। धरती मैया के लिए स्वयं को किसान भी अर्पित करता है और जवान भी। यह शहादत की पराकाष्ठा है, जिसे प्रसिद्धि नहीं चाहिए। इस लोकगीत के साथ अगर वैदिक ऋचा 'माता भूमि पुत्रोअहम् पृथिव्याः' को मिलाकर देखते हैं तो एक नया पाठ खुलता है। वेद अगर मनुष्य की माता पृथ्वी को और मनुष्य को पृथ्वीपुत्र कहता है तो सच्चे अर्थों में पृथ्वीपुत्र कौन? यह प्रश्न उठता है। मनुष्य के झुंड के बीच यह लोकगीत हमें सीधे और सच्चे अर्थों में बताता है कि पृथ्वीपुत्र वही है, जो अपनी धरती माँ के लिए स्वयं की काया को हँसते-हँसते अर्पित कर दें। इस अर्पण की मीमांसा आत्मान्वेषण की मांग करती है। स्वत्व को खोजने के लिए उद्वेलित करती है। यह महाभाव देशभक्ति की भाववाणी को आंदोलित करती है। छत्तीसगढ़ का लोक भारत की नदी संस्कृति को प्रणाम करता है। यहाँ की गंगा, अरपा, इंद्रावती, महानदी, शिवनाथ है। फिर भी यहाँ का लोकजीवन गंगा जी के प्रति अगाध श्रद्धा रखता है। वह अपनी धरती मैया का पांव गंगा जल से पखारना (पाद प्रक्षालन) चाहता है।

"मैं बंदत हौं दिन रात वो

मोर धरती मईया

जय होवय तोर

मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर

\-   -   -

तोर कोरा सब जीव जंतु के

घर दुवार अउ डेरा

\-   -   -

तहीं हमन के सुख दुःख

अउ ये जिनगी के घेरा।"

छत्तीसगढ़िया मन मनुष्य के साथ प्रकृति के सह-अस्तित्व में विश्वास रखता है। धरतीपुत्र अपने साथ सभी जीव-जंतुओं को शरण देने वाली उदारमना धरती मैया को प्रणाम करता है। आज जब गौरेया के साथ अनेक पशु-पक्षी संकट में हैं, धरती के कोरा (गोद) में सबके लिए स्नेह की यह आकाशधर्मा भावना हमें सच्चा मनुष्य बनाती है–

"तोर मया मा जग दुलरामय

वो मोर धरती मईया

हाय रे मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर।"

यह लोकगीत इसलिए भी विशेष है, क्योंकि संदर्भ छत्तीसगढ़ होते हुए भी लोक को 'तोर मया मा जग दुलरामय 'अर्थात् समूची जग की चिंता है। यह चिंता समूची मानवता को दुलारने की है। यह दुलार वात्सल्य का लोकरूप है। मानों छत्तीसगढ़ की धरती वह यशोदा है, जो कृष्ण रूपी संसार को वात्सल्य में सराबोर करना चाहती है। निराला की कविता के शुभभाव जिसमें वे कहते हैं–" जगमग जग कर दे, वर दे वीणावादिनी, वर दे!" या प्रसाद का विश्वमानवतावादी भाव जिसमें श्रद्धा की मंगलवाणी गूँजती है-"शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त / विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय / समन्वय उसका करे समस्त / विजयिनी मानवता हो जाय।"

"तोर महिमा कतक बखानव

वो मोर धरती मईया

हाय रे मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर

\-   -   -

मैं बंदत हौं दिन रात वो

मोर धरती मईया

जय होवय तोर

मोर छईयाँ भुईयां

जय होवय तोर।”

ऐसी धरती की छत्तीसगढ़िया लोक वंदना करता है। इस लोकगीत को पढ़ते हुए मिसाइलमैन ए. पी. जे. कलाम साहब याद आते हैं, जिनके अंतिम शब्द थे “पृथ्वी को जीने लायक बनाया कैसे जाए?" यदि इस लोकगीत के सह-अस्तित्व और मेहनत की संस्कृति को जीवन में आत्मसात् कर लिया जाए तो कलाम साहब के अंतिम शब्द को हम सब सार्थक दिशा दे सकते हैं।

छत्तीसगढ़िया मन को समझने की दिशा में यहाँ की दृश्य कलाओं पर चर्चा जरूरी है। कोई भी दृश्य कला किसी भी समाज की आशा-आकांक्षा और जीवन संदर्भ को प्रामाणिक रूप से सामने रखती है। छत्तीसगढ़ के जन-मन का एक रूप यदि लोकनाट्य-नाचा, गम्मत रहस, भतरा, माओपाटा, खम्ब स्वांग, दहिकांदो, कोकटी, नकटा-नकटी, चीते मुखौटा, सांभर, पुत्तलिका है, तो दूसरा यहाँ के लोक नृत्य सुआ, पंथी, चंदैनी, राऊत नाचा, ककसार, करमा नृत्य, मांदरी नृत्य, हुलकी पाटा नृत्य, घोटुल पाटा नृत्य, एबलतोर नृत्य, गेड़ी / डिटोंग, डंडारी नृत्य, पूस कोलांग / पूस कलंगा, गौर/ बायसन नृत्य करमा नृत्य, सैला / डंड्रा नृत्य, सरहुल नृत्य, सोहर / बार नृत्य, थापड़ी नृत्य, दमनच नृत्य, परब नृत्य, कोल दहका नृत्य, गांडा नृत्य, भड़म नृत्य है। छत्तीसगढ़ के लोकजीवन की संवेदन लय का एक पक्ष और भी है, यहाँ के लोकगीत-ददरिया, चेतपरब और धनकुल, लेजा गीत, रेला गीत, गौरा गीत, बार नृत्यगीत, बिलमा, रीना, पंडवानी, गोंडो, गौर नृत्य गीत, गेंडी नृत्य, गोचो नृत्य, मड़ई, रास, सींग मरिया, रौला नृत्य छेरता, जंगरा गीत, माता सेवा, बाँस गीत, देवार गीत, भड़ौनी गीत, नागमत गीतदहकी गीत आदि।

छत्तीसगढ़ की उदारमना चरित्र की पहचान यहाँ के लोकगीत हैं। लोकजीवन के वास्तविक धरातल पर वाणी देकर लोकगीत, लोकमन की नैसर्गिक चरित्र की उद्घाटनकर्ता की भूमिका निभाता है। आज जब चहूँ ओर भूमंडलीकरण के सुरसा रूप के सामने बाजार की सर्वग्रासी संस्कृति 'निजता' को निगलने के लिए आमादा हो रहा है, ऐसे कठिन समय में सृजनात्मकता की पृष्ठभूमि रचने का कार्य केवल लोकगीतों द्वारा ही संभव है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र की मौलिक चिन्हारी (पहचान) यहाँ का लोक है। यदि लोक शब्द के अर्थ की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं लोक, परंपरा के प्रवाह का सातत्य है। लोक को अंग्रेजी में 'फोक' कहा जाता है। इस 'फोक' के विषय में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ने बताया है कि "आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक (फोक) होते हैं और विस्तृत अर्थ में तो इस शब्द से सभ्य से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है, किंतु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के

लिए ऐसे संयुक्त शब्दों में जैसे 'लोक-वार्ता' (फोकलोर), 'लोकसंगीत' (फोक म्यूजिक) आदि में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है, जो नागरिक संस्कृत और सविधि शिक्षा की धाराओं से मुख्यतः परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है–ग्रामीण और गँवार।"1

इनसाइक्लोपीडिया की इन बातों के आधार पर हिन्दी में लोक साहित्य के आधिकारिक विद्वान डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं–"हम अपनी दृष्टि से यह कह सकते हैं कि 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में, जो तत्व मिलते हैं वे लोकतत्व कहलाते हैं।"2

छत्तीसगढ़ के लोक अभिप्राय की सही समझ के लिए यहाँ के लोकगीतों के पाठ से गुजरना होगा। लोकगीतों की प्रकृति पर चर्चा करते हुए डॉ. सत्येन्द्र का कथन है–"वह गीत जो लोकमानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोकमानसाभास भी हो लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा।"3

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का विपुल विस्तार है। इसमें छत्तीसगढ़ के बहुविध लोकमानस की सहज अभिव्यक्ति हुई है। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के आधिकारिक विद्वान डॉ. हनुमत नायडू ने छत्तीसगढ़ी लोकगीतों को निम्नलिखित सात भागों में विभाजित किया है–

1. संस्कारों के गीतः

(क) सोहर गीत (ख) बिहाव गीत (ग) पठौनी गीत।

2. ऋतुओं से संबंधित गीतः

(क) फाग (ख) बारामासी (ग) सवनाही।

3. उत्सवों के गीत :

(क) छेरछेरा गीत (ख) राउत नाचा के दोहे (ग) सुआ गीत।

4. धर्म व पूजा के गीत :

(क) गौरा गीत (ख) माता सेवा के गीत

(ग) जंवारा गीत (घ) भोजली गीत

(ङ.) धनकुल के गीत (च) नागपंचमी के गीत।

5. लोरियाँ व बच्चों के खेलों के गीत :

(अ) लोरियाँ

(आ) बच्चों के खेलों के गीत :

(क) बइठे फुगड़ी

(ख) खड़े फुगड़ी

(ग) कांऊ-मांऊ अथवा चांऊ-मांऊ

(घ) डांडी-पौहा

(ड.) खुडुवा (कबड्डी)

(च) भौंरा

(छ) बच्चों को बहलाने के गीत

(ज) बच्चों के अन्य स्फुट गीत।

6. मनोरंजन के गीत :

1. नत्य गीत

(क) करमा (ख) डंडा गीत (ग) नाच गीत अथवा नचौरी।

2. अन्य गीत

(क) ददरिया (ख) बाँस गीत (ग) देवार गीत।

7. अन्य स्फुट गीत :

(क) भजन (ख) सतनामियों एवं कबीर पंथियों के रहस्यवादी पद

(ग) पंथी गीत।4

छत्तीसगढ़ की चिन्हारी : भोजली

चिन्हारी विशुद्ध लोक का शब्द है, जिसमें लोक के विभिन्न आशय चिन्हारी के प्रतीक हैं। यह लोक कथा, लोक गीत, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक परंपरा से लेकर लोक-संस्कृति तक प्रसारित है। चिन्हारी को यदि अस्मिता या पहचान के विमर्श के रूप में देखा जाये तब हम इस आलेख के सत्य के अधिक निकट पहुच पाएँगे। छत्तीसगढ़ राज्य की संस्कृति सदैव से विविध संस्कृतियों के संगम का प्रतीक है। यदि छत्तीसगढ़ के उत्तर क्षेत्र की ओर दृष्टि डाले तब आर्य परंपरा के साथ विशुद्ध आदिवासी परंपरा है, तो दक्षिण भाग में द्रविड़ संस्कृति के उपादान के साथ बस्तर की उदारमना आरण्यक प्रकृति इसकी विशिष्टता की चिन्हारी (पहचान) है। यदि उड़ीसा, तेलांगाना, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, झारखंड के लोकमिलन को छत्तीसगढ़ की वसुंधरा से जोड़ दें, तब इसकी चिन्हारी का एक और पक्ष खुलता है। इसके अतिरिक्त यहाँ की सांस्कृतिक विरासत में बौद्ध, जैन, शाक्त से लेकर बाद के समय में तिब्बती बंधुओं का आगमन एक

ताजी हवा के झोंके के समान है। कहने का आशय यह है कि छत्तीसगढ़ के लोक (जनजीवन) की पहचान (चिन्हारी) पर चर्चा स्वतंत्र शोध का विषय है। इस लघु आलेख में भोजली लोकगीत के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की गयी है कि छत्तीसगढ़ क्षेत्र की चिन्हारी भोजली लोकगीत में कैसे उभरी है।

छत्तीसगढ़ की चिन्हारी के रूप में धर्म और पूजा से संबंध रखने वाली भोजली गीत का अमिट स्थान है। प्रथम नजर में यह गीत धार्मिकता का आभास देता है, लेकिन यह धर्म से आगे मनुष्य और प्रकृति के सह-अस्तित्व का उजला दृष्टांत है। 'धान का कटोरा' छत्तीसगढ़ के धानी धरती का रूप है। यह किसान की कर्मचेतना के लिए शुभकामनाएँ हैं तथा छत्तीसगढ़ की तालाब संस्कृति का अमर आख्यान है। कभी-कभी लगता है कि यह भोजली अनुपम मिश्र की यादगार पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' की पूर्व रूपरेखा है।

आइए सर्वप्रथम भोजली पर्व की पारंपरिक कथा पर दृष्टिपात करें। भोजली पर्व का शुभारंभ वर्षा ऋतु में सावन मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन होता है और सावन महीने के पूर्णिमा तक चलता है। छत्तीसगढ़ की बेटियाँ, जो स्वयं सृजन की रूपक हैं, जीवन का आधार हैं संबंधों के व्याकरण की रचयिता हैं, ये कन्याएँ बाँस की टोकरी में मिट्टी भरकर गेहूँ, मूंग, चना, उड़द, कोदो आदि के बीजों को मिट्टी से ढक देती हैं। बोए गये बीजों पर नित्य रूप से जल का छिडकाव किया जाता है। जब ये बीज अंकुरित होकर पत्तियों का रूप धरने लगते हैं। तब भोजली में हल्दी के घोल का छिड़काव किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि हल्दी का छिड़काव देवी लक्ष्मी जी की स्थापना का प्रतीक है। प्रत्येक दिवस भोजली माँ की आराधना में गीत गाये जाते हैं। पन्द्रहवें दिन अर्थात् सावन पूर्णिमा के दिन भोजली का विसर्जन गाँव के तालाब या आस-पास के नदी में किया जाता है। अब आइए भोजली के पाठ से गुजरते हैं और छत्तीसगढ़ लोक की चिन्हारी की यात्रा करते हैं–

"अहो देवी गंगा

देवी गंगा देवी गंगा, लहर तुरंगा।

हमर भोजली दाई के भीजे आठों अंगा।"5

इन पंक्तियों को जब बेटियाँ सस्वर गाती हैं तब अनेक दृश्य आँखों के सामने उभरने लगते हैं, सृजन की रूपमाला बनकर। दृश्य गाँव के तालाब का है। महीना सावन का है। सावन अर्थात हरियाली और सजलता के प्राणपण का महीना।

इन पंक्तियों में यदि एक ओर प्यासी धरती में सावन को सावन की तरह बरसने की लोक कामना है, तो दूसरी तरफ छत्तीसगढ़ की मित्र परंपरा का विराट् आख्यान भी शामिल है। लोकगीतों के प्रत्येक शब्द लोकजीवन की सहज बोध का परिचायक है। गाँव के तालाब में जब जनसमूह भोजली विसर्जन के लिए जाता है। तब उन्हें बार-बार माता भोजली से यही कामना होती है कि हे भोजली माँ ! मेरे गाँव के तालाब को गंगा की भाँति जल से सराबोर कर दे। जब सावन बरसेगा तभी किसान जीवन खुशहाल होगा। महाराष्ट्र, तेलंगाना और कालाहांडी की प्यासी धरती में हरियाली बिखरेगी। सावन का महीना अगर नहीं

बरसा तब किसान की आशा धूमिल हो जायेगी। मानवता की गति अवरूद्ध हो जायेगी। यह लोकगीतों को धार्मिक आशय के चौखटे को तोड़कर संपूर्ण मानवता के लिए मंगलकामना रचने का विस्तृत कैनवास है। लोक की विशेषता सदैव से विश्वजनीन रही है। लोक हमेशा अहं को छोड़ वयं (हम सब) की चिंता करता है। छत्तीसगढ़ की लोक-संस्कृति का यह उजाला है, चिन्हारी है और अस्मिता भी।

गीत के पाठ से गुजरते हुए मन बार-बार जल की धार के समान तुरंग (घोड़े) की गति से दौड़ने लगता है। गंगा को गाँव के तालाब में उतारने का शुभ संकल्प मेहनतकश किसान के ही बूते की बात है। वह नि:स्वार्थ परिश्रम करता है। इस लोकगीत का संवेदन लय सुप्रसिद्ध छत्तीसगढ़ी लोकगीत की उन पंक्तियों से जुड़ता है, जिसमें कहा गया है–

"झिमिर झिमिर बरसे पानी,

दौडो रे संगी

दौड़ो रे साथी

चुचवावत हे ओरवाती

मोती झरे खपरा छानी

लइका मन झूमय नाचय

बबा ह रामायण बाचय

त त त आवाज आवै

बचन लगय गीता बानी,

झिमिर-झिमिर बरसत हे पानी।"

किसान सावन की घनघोर बून्दों के मध्य अपने हीरा और मोती सरीखे जीवन सहचर बैलों को लेकर खेतों में नागर (हल) चला रहे हैं। बैलों को सीधे चलने के लिए किसान के मुख से निकली आवाज गीता के श्लोक की तरह लगती है। अकारण नहीं गीता 'कर्मयोग' की महान रचना है और किसान मानवता के मूल रचनाकार। भोजली के भाव का एक कोण यदि किसान जीवन के यथार्थ का प्रकटीकरण है तो दूसरा कोण छत्तीसगढ़ की तालाब संस्कृति का निदर्शन भी।

यह भोजली तालाब को गंगा बनाने की प्रतिज्ञा का नाम है। छत्तीसगढ़ की 'तालाब संस्कृति' यहाँ की पहचान है। पूरे भारत का भ्रमण कर तालाबों पर शोध करने वाले हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि भवानी प्रसाद मिश्र के सुपुत्र अनुपम मिश्र जी छत्तीसगढ़ के भोजली की तुलना बुन्देलखण्ड की कजली से करते हैं, उन्होंने अपनी किताब 'आज भी खरे हैं तालाब' में छत्तीसगढ़ की तालाब संस्कृति की आत्मनिर्भरता एवं सांस्कृतिक विरासत को बड़े आदर से याद किया है–

"आज बड़े शहरों की परिभाषा में आबादी का हिसाब केन्द्र में है। पहले बड़े शहर या गाँव की परिभाषा में उसके तालाबों की गिनती होती थी। कितनी आबादी का शहर या गाँव है। छत्तीसगढ़ी में बड़े गाँव के लिए कहावत है कि 'छै आगर छै कोरी' यानी 6 बीसी और, 6 अधिक, 120 और 6 या 126 तालाब होने चाहिए। आज के बिलासपुर जिले के मल्हार क्षेत्र में, जो ईसा पूर्व बसाया गया था, पूरे 126 तालाब थे। उसी क्षेत्र में रतनपुर (दसवीं से बारहवीं शताब्दी), खरौद (सातवीं से बारहवीं शताब्दी), रायपुर के आरंग और कुबरा तथा सरगुजा जिले के डीपाडीह गाँव में आज आठ से सौ, हजार बरस बाद भी कहीं-कहीं तो पूरे 126 तालाब गिने जा सकते हैं।

इन तालाबों के दीर्घ जीवन का एक ही रहस्य था-ममत्व। ऐसी मान्यता के बाद रख-रखाव जैसे शब्द छोटे लगेंगे। भुजलियाँ (भोजली) के आठों अंग पानी में डूब सकें-इतना पानी ताल में रखना-ऐसा गीत गाने वाली, ऐसी कामना करने वाली स्त्रियाँ हैं, तो उनके पीछे ऐसा समाज भी रहा है, जो अपने कर्तव्य में इस कामना को पूरा करने का वातावरण बनाता था। घरगैल, घरमैल, यानी सब घरों में से तालाब का काम होता था।"6

भोजली के माध्यम से अनुपम मिश्र जी छत्तीसगढ़ लोक की परंपरा को शिष्ट समाज के सामने रखते हैं, जिसका जीवन भौतिकता के कंकीट में फँसकर सजलता खोते जा रहा है। अनुपम मिश्र जी स्वयं लोक परंपरा से कटे किताबी इंसानों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं–

"सैकड़ों, हजारों तालाब,

जोहड़, नाड़ी, कुएँ, कुई, बेरी,

ऐरि आदि अचानक शून्य से

प्रकट नहीं हुए थे।

इनके पीछे एक इकाई थी

बनवाने वालों की, तो दहाई थी

बनाने वालों की।

यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हजार बनती थी।

पिछले दो सौ बरसों में नये किस्म की थोड़ी-सी

पढ़ाई पढ़ गये समाज के

एक हिस्से ने इस इकाई, दहाई,

सैकड़ा हजार को शून्य ही बना दिया है।

यह शून्य फिर से इकाई, दहाई सैकड़ा और हजार बन सकता है।"7

भोजली लोकगीत के भावों को संदर्भ में रखकर जब अनुपम जी लोक टिप्पणी पर नजर दौड़ाते हैं तो 'हमर तरिया नदिया सब मरत नजर आवत है'। चाहे रायपुर शहर हो या छोटे-छोटे गाँव आज यहाँ के तालाब पट रहे हैं या पटने के कगार पर है। भोजली का लोक भावबोध पुनः उत्सवधर्मी रूप से गाता है–

"आई गइस पूरा बोहाइ गइस कचरा

हमर भोजली दाई के सोने सोने के अंचरा

आइ गइस पूरा बोहाइ गइस मलगी

हमर भोजली दाई बर सोने सोन के कलगी।"8

लोकमन का कंठहार है ये पंक्तियां। जिसमें भोजली दाई के सोने (स्वर्ण) आँचल और सोने (स्वर्ण) के समान कलगी की बात कही गयी है। मेहनतकश धरतीपुत्र किसान के पसीने की बूंद जो गंगाजल से पवित्र है। अब सार्थक रूप ले चुका है। सावन की हरियाली अब सोने (स्वर्ण) में परिवर्तित हो गयी है अर्थात् अब खाद्यान्न घर आ चुका है। इसके बावजूद ग्राम्यमन पूरी विनम्रता के साथ भोजली माँ को इसे समर्पित कर रहा है। इस लोकगीत में किसान की पूरी यात्रा दिखती है। भोजली को माध्यम बनाकर किसान स्त्रियाँ अपनी भावनाओं को सृजन की देवी भोजली को समर्पित कर देती है। भोजली की सृजनशील मातृरूप सहज ही सिंधु घाटी सभ्यता का मातृदेवी की याद दिलाती है, जो उस कांस्ययुगीन सभ्यता में सृजन का रूप था। भोजली की अगली पंक्तियाँ हैं–

"कुटि डारेन धान पछोरि डारेन भूसा

लइके लइका हवन, भोजली झन होहु गुस्सा

सोने के कलसा गंगाजल पानी

हमर भोजली दाई के पैया पखारी

सोने के दिया कपूर के बाती

हमर भोजली दाई के आरती उतारी

पानी बिन मछरी पवन बिन धान

सेवा बिन भोजली के तरसे परान

माड़ी ले जोंधरी पुरुष कुसियार

जल्दी जल्दी बाढ़ो भोजली होवौ हुसियार।"9

भोजली देवी की स्थापना बच्चों के वात्सल्य से पूरित है। इसलिए वह कर्म-काण्ड एवं दिखाने के आनुष्ठानिक विधियों से दूर लोक की सहजता से पूरित है। इस लोकगीत के प्रतीक किसानी संस्कृति, श्रम सौन्दर्य, मनुष्य और प्रकृति के सहजात रिश्ते एवं सरल लोक विश्वास की अद्भुत बानगी है। प्रकृति का सहज मानवीकरण, जिसमें भोजली को मनुष्य के माड़ी (घुटने) एवं कुसियार (गन्ने) की तरह ऊँचाई तक उठने की लोकमन की नैसर्गिक भावना अद्भुत है। भोजली को जल्दी-जल्दी बड़ी होकर होशियार बनने के लिए कहना, ईश्वर और मनुष्य के बीच समानता एवं संवाद के विभिन्न मनोभावों को व्यक्त करती है। साथ ही ग्राम्य जीवन की स्त्रियों द्वारा भोजली को, जो स्वयं एक कन्या का रूप है, उस कन्या 'भोजली' को जीवन की समझ रखने वाली, जीवन के नाना अनुभवों से गुजरने वाली लोक नारियों द्वारा अपने अनुभव सत्य के आधार पर, अपनी पुत्री के समान भोजली को बड़ी होने के लिए कहना, होशियार होने के लिए कहना लोकजीवन की माँ का पुत्री को व्यक्तित्ववान बनने के लिए कहना है। एक अर्थ में यह लोकगीत स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के उत्सव में गाया गया गीत है, जिसमें भोजली अपना देवी रूप छोड़कर सामान्य बालिका प्रतीत होने लगती है। भक्त और भगवान की सहज भावभूमि पर जीवन की लोकयात्रा की परम अनुभूति का राग है यह लोकगीत। इस लोक-गीत के अंतिम पद कुछ इस प्रकार हैं–

"अखरा माँ आंखर चांउर

गदुला माँ दुध

खड़े हे कौसिल्ला रानी

मांगथे पूत

दूध मांगेन पूत मांगेन

अउ मांगेन आसीस

जुग जुग जियव भोजली लाख बरीस।"10

भोजली संपूर्ण मनोकामनाओं को पूरित करने वाली स्त्री शक्ति की प्रतीक है। जिसके प्रार्थना के एक धरातल पर यदि लोकजीवन के बीच से उठी कौशल्या माँ पूत (पुत्र) के वरदान के लिए खड़ी है, तो दूसरी ओर लोक के नर-नारी, धन-धान्य से पृथ्वी को भर देने की मनोकांक्षा की दीप जलाये बैठी है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि महाकोशल (छत्तीसगढ़ क्षेत्र) की बेटी कौशल्या है।

यह माँ पृथ्वी में दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित सर्वसुखद रामराज्य के नायक राम की जननी है। भोजली के आशीष से कौशिल्या को राम जैसा पुत्र मिलता है। यह भोजली लोकगीत का एक उज्ज्वल पक्ष है। भोजली लोकमंगल की प्रतीक है और राम का विशाल चरित्र भी। इन पंक्तियों में भोजली के परोपकारी भाव में कौशल्या के पुत्र राम का लोकमंगल भाव छिपा है।

लोकगीत अनंत अर्थ संभावना की वाहिका होती है, साथ ही वह संवाद के निरंतर भावबोध की रचयिता भी। 'फ्रेंडशिप डे' के आधुनिक कल्चर के समय भोजली के बहाने छत्तीसगढ़ की चिन्हारी 'मित्र परंपरा' पर चर्चा जरूरी है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में 'भोजली' मित्र बनाने का स्थायी प्रतीक है। ऐसा मित्र जो रक्त संबंध से ज्यादा प्रेरणादायी और विशिष्ट है। 'भोजली' विसर्जन के दिन गाँव के तालाब के पार खड़ी होकर दो स्त्रियाँ एक-दूसरे के कानों में भोजली लगाकर जीवन भर के लिए मित्र बन जाती है। अब एक-दूसरे का सुख-दुःख दोनों के मन में समान संवेदना की वाणी बन जाता है। भोजली बदना दो बेटियों के मध्य संबंध की हरियाली और सृजनरत रहने का अनूठा प्रतीक है। यह भोजली आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के संधि बिंदु पर स्थित प्रवाहमान समय में तमाम शोरगुल के बीच संबंधों की हरीतिमा और उज्ज्वलता को बचाये रखने का लोक अरमान है।

इसी प्रकार मित्र-भाव के कई रूप छत्तीसगढ़ की चिन्हारी के रूप में हमें दिखायी देते हैं जैसे 'जंवारा बदना'। भगवान जगन्नाथ के प्रसाद को एक-दूसरे को खिलाकर 'महाप्रसाद' बनाना। तुलसी दल को साक्षी मानकर 'तुलसीदल'। गंगा जी की रेत को साक्षी मानकर 'गंगाबारू'। गंगाजल को साक्षी मानकर 'गंगाजल'। दवना के पत्ते (पान) को एक-दूसरे के कान में लगाकर 'दवनापान'। दो सखियों को समान संख्या में सन्तान होने पर 'सखी बदना'। दो पुरुषों के समान नाम होने पर 'सहिनाव'। दो स्त्रियों के समान नाम होने पर 'सहिनई'।

यह विविधवर्णी मित्र संबंध माला लोक की विशिष्टता है। यह विशिष्ट संदर्भ ही है, जो 'मित्र' पर इस माटी के अग्रगण्य कवि विनोद कुमार शुक्ल जिनके बिना हिंदी कविता का इतिहास अपूर्ण है, वे लिखते हैं–

"हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

व्यक्ति को मैं नहीं जानता था

हताशा को जानता था

इसलिए मैं व्यक्ति के पास गया

मैंने हाथ बढ़ाया

मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हो गया

मुझे वह नहीं जानता था

मेरे हाथ बढाने को जानता था

हम दोनों साथ चले

दोनों एक-दूसरे को नहीं जानते थे

साथ चलने को जानते थे।"

ऐसी व्यापक फलक वाली कविता भोजली भूमि छत्तीसगढ़ में ही संभव है।

भोजली 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' का प्रेरक प्रतीक है। वैश्वीकरण के परिवेश की देन 'सीमित होते हृदय प्रदेश' में भोजली विस्तार की भावपूर्ण नक्षत्र माला है। भोजली छत्तीसगढ़ की 'तालाब संस्कृति' की द्योतक है। यह तालाब संस्कृति पूरे देश में तेजी से मृत होते जल स्रोतों की चिंता और चिंतन के लिए विवश करती है। भोजली अपनी लोकवाणी में छत्तीसगढ़ की सजल चिन्हारी बनकर स्वार्थ के वशीभूत होते मानव समाज को मित्र-भाव की जीवित परंपरा से जोड़ती है। भोजली का उत्सव जलवायु परिवर्तन की चिंता को सामने रखता है। जब पर्यावरण के क्षेत्र में हो रहे कार्य कागज से निकलकर कर्म में तब्दील होगें तभी 'देवी गंगा, देवी गंगा की लहर तुरंगा' होगी। भोजली के लोकलय से गुजरते हुए आदिवासी विमर्श की सशक्त हस्ताक्षर निर्मला पुतुल याद आती हैं। इसके दो कारण है प्रथम भोजली स्त्री सृजन की प्रतीक है और दूसरा निर्मला पुतुल की कविता स्त्री की सृजनात्मकता के बहाने पूरी दुनिया को बचाने का शुभ संकल्प। निर्मला पुतुल लिखती है–

"आओ, मिलकर बचाएँ

जंगल की ताजा हवा

नदियों की निर्मलता

पहाड़ों का मौन

गीतों की धुन

मिट्टी का सोंधापन

फसलो की लहलहाहट

नाचने के लिए खुला आँगन

गाने के लिए गीत

हँसने के लिए थोड़ी-सी खिलखिलाहट

रोने के लिए मुट्ठी भर एकान्त

बच्चों के लिए मैदान

पशुओं के लिए हरी-हरी घास

बूढ़ों के लिए पहाड़ों की शान्ति

और इस अविश्वास-भरे दौर में

थोड़ा-सा विश्वास

थोड़ी-सी उम्मीद

थोडे-से सपने

आओ, मिलकर बचाएँ

कि इस दौर में भी बचाने को

बहुत कुछ बचा है, अब भी हमारे पास।"11

संदर्भ

1. लोक साहित्य विज्ञान-डॉ. सत्येन्द्र, प्रकाशक-राजस्थानी ग्रन्थागार, द्वितीय सं. 2006 (सोजती गेट, जोधपुर (राज0) पृ. 15,

2. वही-पृ. 15

3. छत्तीसगढ़ी लोकगीत-डॉ. हनुमंत नायडू, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, संस्करण-2011, पृ. 5-6

4. वही-पृ. 53

5. वही-53

6. आज भी खरे हैं तालाब-अनुपम मिश्र, (प्रभात पेपर बैक्स, संस्करण-2011, पृ. 90-91)

7. वही-फ्लैप पेज से।

8. छत्तीसगढ़ी लोक-गीत-डॉ. हनुमंत नायडू-पृ. 5

9. वही-पृ. 5

10. वही-पृ. 5-6

11. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द-निर्मला पुतुल, (तृतीय संस्करण-2012, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 76-77)

भुवाल सिंह ठाकुर,

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, शासकीय महाविद्यालय,

अखात, धमतरी, छ.ग.